ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-1* April-2021
Anthology : The Research

किशोरवय से संवाद – चित्रकारी और कथाओं द्वारा

Dialogue with Adolescence : Through Paintings and Stories

Paper Submission: 01/04/2021, Date of Acceptance: 18/04/2021, Date of Publication: 19/04/2021

जूही शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
चित्रकला विभाग,
प्रयाग महिला विद्यापीठ डिग्री कॉलेज, प्रयागराज,
(इलाहाबाद) उत्तर प्रदेश,
भारत

सारांश

संसार में चाहे कोई ऐसी नस्ल हो जिसमें सिर्फ 10 लोग बचे हों, उसे भी सुरक्षित रहने, अपनी पहचान बनाए रखने और फलने–फूलने का अधिकार है। डाल में लगा पत्ता और डाल से टूटा पत्ता–पत्ता ही कहलाता है, लेकिन दोनों की नियति में कितना अंतर है, एक को जड़ों समेत वृक्ष की जीवन–शक्ति मिली होती है जबकि दूसरे का अकेला जीवन सिर्फ सूखने भर को बचा रहता है। माता–पिता से संवाद कायम रखते हुए बच्चे या किशारों में पेड़ से जुड़े पत्ते के समान जीवन संचरित होता रहता है किन्तु आज के इलेक्ट्रॉनिक डिजिटल युग में विभिन्न उपकरणों जैसे मोबाइल इत्यादि ने बच्चों को डाल से टूटे पत्ते जैसी स्थिति में कर दिया है। दिन रात इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में समय बिताते ये किशोर–किशोरियाँ एक अलग ही तरह के मौन में जी रहे हैं। ये मौन जब कभी टूटता है तो काफी भयावह स्थिति में ला देता है। गुरूग्राम के रेयान स्कूल की घटना और लखनऊ की घटना प्रमाण हैं। अतः हमें एक बार पुनः अपने परम्परागत मूल्यों की ओर जाना होगा, जब बच्चे अपने माता–पिता, नाना–नानी या मोहल्ले में किसी बड़े से कथाएं सुनते थे, चित्र रचते थे, हस्तकला में अपना समय बिताकर मनोरंजन करते थे।

In the world, even if there is a breed in which only 10 people are left, it also has the right to be safe, maintain its identity and flourish. The leaf in the branch and the leaf that is broken from the leaf is called the leaf, but what is the difference between the destiny of the two, one has got the vitality of the tree with roots while the other's life alone is left only to dry. By keeping communication with parents, children or adolescents continue to transmit life like a leaf attached to a tree, but in today's electronic digital age various devices like mobiles etc. have put children in a situation like a broken leaf from the tree. These teenagers, who spend time day and night in electronic devices, are living in a different kind of silence. This silence, when breaks, brings it into a very frightening situation. The incident of Reyan School in Gurugram and the incident in Lucknow are evidenced. So we have to go back to our traditional values once again when children used to listen to stories from their parents, grandparents or elders in the locality, draw pictures, entertain themselves by spending their time in handicraft.

मुख्य शब्द : किशोर, युवा, बच्चे, संवाद, चित्रकारी, बातचीत, प्रयास, सफल, समाज, मानव, जानकारी, विवेक।

प्रस्तावना

शिक्षा के क्षेत्र की महान विभूति गिजुभाई बधेका ने बहुत वर्ष पहले ही हमें आगाह किया था। उन्होने कहा था कि आप बाल कथाएं लीजिए और उन्हें बालकों को सुनाते रहिए। बालक इन्हें खुशी–खुशी और बार–बार सुनेंगे। आप इन्हें सुंदर ढंग से सुनाइए। बालकों की उम्र को ध्यान में रखकर ही कथा पसंद कीजिए। भाई मेरे एक काम आप कभी मत करिये। ये कथाएं ऐसी हों कि इन्हें बालकों को रटना न पड़ें, परीक्षा के लिए न पढ़ना पड़े, दोहराना न पड़े।

यदि आपको बालकों के साथ प्रेम का नाता जोड़ना है, तो उसका श्रीगणेश कथा से कीजिए। चित्रकारी से कीजिए। बड़े पंडित बनकर कथा कभी न कहिए। कथा के द्वारा ज्ञान मत दीजिए। तटस्थ रहकर भी कथा न कहिए। कथा और चित्रकारी में आप स्वयं भी बहलें और बच्चों या किशोरों को भी बहलायें।

जब संवाद के लिए भाषाओं या लिपियों की खोज नहीं हुई थी तब आदिम युग में संवाद या संप्रेषण का माध्यम चित्रकारी ही थी। आदिम गुफाओं

के रेखाचित्र इस बात का प्रमाण हैं। धीरे–धीरे विकास की गति तेज होती गई, सभ्यता ने अपने पैर पसारने शुरू किए और हमारी बातचीत लिपियों के माध्यम से, संचार माध्यमों से गुज़रती हुई; आज मुट्ठी में कैद एक दुनिया के ज़रिए हम तक प्रवेश कर चुकी है।

बातचीत के इतने ज़्यादा उपकरण बढ़ते जा रहे हैं कि सांसों की छुअन नदारद हैं। हम चीजों को सिर्फ देख और सुन पा रहे हैं कुछ भी हमारी पकड़ से दूर एक वर्चुअल दुनिया है; आभासी जगत ऐसे में बहुत संभव है कि हमारे बच्चे और किशोर भी हमारी जानकारी की जद से छिटके हुए हैं।

बीसवीं शताब्दी का एक वह दौर भी था जब लगभग 1928 के आसपास पंडित जवाहर लाल नेहरू ने मैदानी इलाकों में रहते हुए स्वयं से सैकड़ों किलोमीटर दूर हिमालय क्षेत्र में रह रही अपनी पुत्री इन्दिरा प्रियदर्शिनी से हस्तलिखित पत्रों के माध्यम से सफल संवाद कायम किया हुआ था जो सिर्फ संवाद तक ही सीमित नहीं था बल्कि देश दुनिया की, सभ्यताओं की यात्राओं का पूरा ज़खीरा था। एक मातृविहीना पुत्री की परवरिश के लिए एक अकेले पिता की चिन्ता थी कि अपनी संतान को कैसे जानकार बनाया जाये। यह प्रयास सफल भी था। आज माँ–बाप के साथ बच्चे घरों में रहते हुए भी संवादहीनता के शिकार हैं। परिवार से उठी यह संवादहीनता पड़ोस, मोहल्ले, कालोनी, शहर, समाज, देश दुनिया तक फैल चुकी है। 'डिजिटल दुनिया मुट्ठी में क़ैद है। गूगल गुरू की बात हो रही है लेकिन फिर भी अमेरिका के फ्लोरिडा प्रांत में एक 19 वर्षीय छात्र निकोलस क्रूज ने मात्र स्कूल से निकाले जाने के कारण खुद को इतना अपमानित और दुःखी पाया कि जिस स्कूल में उसने हाईस्कूल तक शिक्षा पाई, वहीं पर गत 15 फरवरी 2018 को 17 लोगों को ताबड़तोड़ गोलियां बरसाकर मौत के घाट उतार दिया। दोष किसका कहा जायेगा? जाहिर है कि कारण सिर्फ वही नहीं होता जो दिखता है। यदि निकोलस ने अपने माता–पिता या गुरुओं से संवाद कायम रखा होता तो शायद ये नौबत नहीं आती। हम सोचते हैं कि इन्टरनेट पर सब कुछ है ज्ञान भी है लेकिन बावजूद इसके सांसों के अदान–प्रदान एवं मांसल संवाद की भी आवश्यकता आज बनी हुई हैं

चित्रकारी हो, संगीत हो, साहित्य हो या कोई खेल जिसमें हम बच्चों को समूह में रखकर विचारों का सम्प्रेषण करा पायें तो काफी हद तक किशोर वय का अकेलापन दूर हो सकता है। इसके लिए समय देना ही होगा। समयाभाव का रोना रोकर बचा नहीं जा सकता। जब कोई दुर्घटना घट जाती है तब हम चेतते हैं। कथा कहानियों और चित्रों के माध्यम से हमारे भीतर वैचारिकता और रंगों के प्रति संवेदना का विस्तार होता है। नेहरू जी की पुस्तक 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' की भूमिका में प्रियंका गांधी बढेरा ने एक बात उल्लिखित की है कि जब वे ग्यारह वर्ष की थी और बोर्डिंग स्कूल में थीं तब उन्होंने अपने परदादा के पत्र जो उनकी दादी को लिखे गये थे से सम्बन्धित पुस्तक पढ़ी थी और वे इस नतीजे पर थीं कि देश दुनिया के लिए सख्त महिला इन्दिरा उन बच्चों के साथ बहुत गर्मजोशी और प्यार से पेश आती थीं और बच्चों को काफी जानकारियाँ भी देती थीं। उनकी समस्त जिज्ञासाओं को शान्त करती थीं, यहाँ तक कि बागीचे में टहलते हुए वह फूलों की पंखुड़ियों के टेक्शचर और सतह पर बात करती थीं, बीटल के पंखों के बारे में भी बात करती थीं और आकाश के तारों को पहचानने की बात करती थीं।''[1] इसमें कोई शक नहीं कि हम अपने पूर्वजों, अभिभावकों से सुनी बातों को अपने बच्चों को बताते हैं, लेकिन जब बातचीत होगी नहीं तो हम कुछ भी कैसे बता पायेंगे। 'ब्रम्हाण्ड की उत्पत्ति के अरबों साल पश्चात पृथ्वी पर मानव अस्तित्व में आया।''?[2]

मानव के साथ मानवता की विशेषता जुड़ी। यह मानवता सभ्यता और संस्कृति के परिष्कार से गुंथी हुई हैं। यह संस्कार, परम्परा और परहित की भी बात करती हैं। इसे बचा लेना हमारी प्राथमिकता है। आज बच्चे छोटी–छोटी बातों को दिल से लगा लेते हैं, जो किशोरावस्था तक आते आते बहुत गम्भीर हो जाती हैं। माता पिता द्वारा पैसा कमाने की होड़ ने बच्चों को अकेला किया है। वे अपने अकेलेपन की कीमत अभिभावकों से मनचाही वस्तुएं लेकर वसूलते हैं। ये आदत बन जाती हैं, वे कुछ भी पाने की होड़ करने लगते हैं और मनचाही वस्तुएं न मिलने पर निराश भी बहुत जल्दी हो जाते हैं और अपनी निराशा का प्रबन्धन नहीं कर पाते। चित्रकारी हस्तकला और अन्य रचनात्मक कार्यों में असफलता भी मनोरंजक होती है और पुनः प्रयास के लिए प्रेरित करती हैं। धैर्य और जीवंतता का भी विकास होता है। कथाएं पढ़कर साहित्य पढ़कर हम दूसरों के जीवन में घटने वाली घटनाओं से प्रेरणा लेते हैं अतः कोशिश ये हो कि अच्छा साहित्य ही दिया जाये बच्चों को।

प्रेमचन्द की कहानी 'ईदगाह' में ग़रीबी और मुफ़लिसी के बाद भी हामिद कम पैसे के चिमटे से ही इतना खुश होता है मानो उसे सारा जहान मिल गया हो और अपने दोस्तों को भी अपने चिमटे का कायल बना देता है। मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि जिस बच्चे ने प्रेमचन्द की कहानी 'ईदगाह' पढ़ ली वह कभी भी निराशा की गर्त में नहीं जा सकता। जिस बच्चे ने दीवारों को रंगना शुरू कर दिया वह अपने जीवन में भी रंग भरने की क़ाबिलियत रखता है।

आज से इक्कीस वर्ष पूर्व प्रसिद्ध पत्रकार और साहित्यकार श्री प्रभाकर श्रोत्रिय ने जुलाई 1997 में अपने लेख 'सदी के अंत में बच्चा' लिखा था जिसमें उन्होंने बहुत सारे प्रश्न उठाए थे.....जो आज भी ज्यों का त्यों हैं–मसलन ''वह टीवी चैनलों से मुखातिब है। हाथ में रिमोट कंट्रोल। वह पट–पट दृश्य बदलता है, कहीं स्थिर नहीं रह पाता। हर पल विचलन उसकी ज़िन्दगी का हिस्सा है। खेल के नाम पर वीडीओ खेल। सिर्फ दिमाग और उँगलियाँ सक्रिय बाकी सब बेकाम–हाँथ, पाँव, फेफड़ें, फुर्ती–कौशल, मेहनत–सब। फिल्में हैं– तेज और बेहया नाचगाने, मार–धाड़, सेक्स–शाट्स, अजूबे अकल्पनीय कारनामे। बाल मन बेहद उत्तेजित है। क्रान्ति के नाम पर सूचना–क्रान्ति, जिसका सबसे ज़्यादा शिकार है बच्चे और किशोर। ये उम्र से पहले ही न जानने योग्य जानने लगे हैं। जबकि चुनने और त्यागने का विवेक विकसित नहीं होता। कच्ची डाल हो तो फलों का बोझ भी उन्हें तोड़

देता है। सोच, अभिव्यक्ति, विकास और सृजन के रास्ते उन्हीं चीजों की बेतरतीब भीड़ से पट गये हैं जो उन्हें प्रशस्त करने के लिए बताई गई हैं। सोचने, साधने, धँसने का बच्चे के पास न समय है न क्षमता।''[3] वाट्सऐप, इंस्टाग्राम, गूगल, फेसबुक और जाने कितने ऐप करोड़ो जानकारियाँ अच्छी खराब सब 'गड–मड.....जो एक खेल से ज़्यादा कुछ नहीं और सभी एक सेकंड में डिलीट, मोबाइल नामक यन्त्र. से भी और मानव मस्तिष्क से भी....। हॉट–स्पॉट ऑन करते ही हॉट गर्लफ्रेन्ड और ब्वॉय फ्रेन्ड.. ...के प्रोमोस आने लगते हैं....हॉट क्लिपिंग्स से बच्चे अध्ययन सामग्री ढूँढ़ते–ढूँढ़ते कुछ और ही पा लेते हैं, शिखर की चोटी पर पहुँच कर सब कुछ ठंडा.....अदम्य उत्साह, जिज्ञासाएँ सब समाप्त.....नशे का इंतजाम....नींद..... नींद.....और सब सुस्त....। कैसे संभव होगा युवा भारत का स्वप्न.....जब हमारे किशोर ही काहिल हो जायेंगें।

श्रोत्रिय जी ने बहुत सही कहा था–बच्चा स्कूल जा रहा है–दौड़ रहा है किताबों का कुली पीठ झुकाए। उस पर लदे हैं स्कूल, अभिभावक, समय, परिवेश। बच्चे को इसी उम्र में पारंगत बना देना है–हर हालत में हर तरकीब से। स्कूलों में प्रतिस्पर्धा भी कैसी है? व्याकुलता, खीझ भरी त्वरा, उपलब्धि के बावजूद हीनता बोध से भर देने वाली स्पर्धा, क्योंकि सारा कुछ अंकों की तात्कालिक नुमाइश पर टिका है। यही पैमाना होता तो आइंस्टीन कभी न बन पाते आइंस्टीन–स्कूल में तो फिसड्डी थे।[4]

हमने विकसित देशों से मॉडल, शब्दावली वगैरह तो ले ली–मगर क्या वह सब भी लिया जो वे बच्चों को देते हैं? सुंदर किताबें, मनोरंजन के लिए एक से एक खूबसूरत खिलौने, जो विदेशों में बहुत सस्ते दामों में मिलते हैं। अविकसित या विकासशील दुनिया में इन चीज़ों की कैसी शक्ल सूरत होती है– हम सब जानते हैं। बच्चे से सम्बन्धित हर चीज़ यहाँ सबसे महंगी है– किताबें, खिलौने, कपडे, स्कूल।[5] और फिर स्कूल के बाद की पढ़ाई और दूसरे शहर जाकर रहने का खर्च.....डोनेशन..... सब कुछ मध्यवर्गीय माता–पिता की कमर तोड़ देने के लिए काफी है।

मुझे याद है कि हमारे यहाँ चित्रकला की शिक्षा की विशुद्ध भारतीय शुरूआत बंगाल शैली के चित्रकारों ने की। वे कागज़ पर वाश तकनीक से जो चित्र बनाते थे वह बहुत कम खर्चीला होता था। बनस्थली में फ्रेस्को और टेम्परा शैली में बनने वाले चित्र भी अपने जमीनी, खनिज रंगों से निर्मित किए जाते थे जिसमें अत्यन्त मेहनत होती है। बच्चे, किशोर और युवा दिन भर कार्य करने के बाद अदम्य खुशी और उत्साह से भर जाते है। हमने वर्ष 2001 में बनस्थली में भयंकर गर्मी में दो महीना मई और जून फ्रेस्को शिविर में काम किया– मोबाइल और नेट तब भी था लेकिन हमें फुरसत नहीं होती थी कि हम उनका प्रयोग करें....सुबह आठ बजे से शाम 6 बजे तक हम सभी विद्यार्थी कलाचार्य पं. देवकी नंदन शर्मा और मिस्त्रियों के साथ काम में लगे रहते थे। एक दूसरे से बोलते बतियाते.. ...बहुत सुखद अनुभूति का वातावरण था। इसी प्रकार एनसीईआरटी की कार्यशालाओं में भी कविता कहानी लिखते एक दूसरे को सुनते सुनाते बहुत सकारात्मक संवाद बनता था...अतः स्कूलों में समय समय पर इस प्रकार की कार्यशालाएं होने से बच्चों किशोरों और युवाओं में नई जागृति लाई जा सकती हैं उन्हें अकेलेपन और निराशा से बचाया जा सकता है। खेलकूद और व्यायाम की नियमित कक्षाओं के साथ मस्तिष्क के व्यायाम के लिए नियमित रचनात्मक कक्षाएं चलाई जायें तो काफी हद तक हम वर्तमान समस्याओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं लेकिन पहल हमें स्वयं करनी होगी।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य वर्तमान समय में बच्चों, किशोरों और युवाओं की मनोदशा को समझने हेतु अभिभावकों ,शिक्षकों और समाज को उनके प्रति जागरूक और संवेदनशील बनाने की दिशा में एक मुहिम का प्रारंभ करना है।जिससे बच्चों और किशोरों में कौशल विकास, प्रकृति प्रेम एवं आत्मदर्शन का भाव प्रबल हो तथा वे आन्तरिक रूप से मजबूत होकर देश, काल और दुनिया में सकारात्मक संघर्ष के लिए तैयार हो सकें।

निष्कर्ष

वर्तमान कोरोना काल में विगत एक वर्ष से अधिक समय में एकांतवास झेल रहे समाज के समक्ष जब आज जीवन का संकट आ गया है और उससे बचने की प्राथमिकता ने सारी सामाजिक गतिविधियों को "सोशल डिस्टेंसिंग" के दायरे में बांध दिया तब इसी मोबाइल स्मार्टफोन और तमाम इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स ने हमारा साथ तो दिया ही, बच्चों की ऑनलाइन शिक्षा का माध्यम भी बना लेकिन ये नाकाफी था। इससे भी अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक थकान हो रही है। आत्महत्या, अवसाद और मानसिक यातना के साथ–साथ गरीब बच्चों को भूख प्यास से भी जूझना पड़ रहा था। अब तो सांसे भी खरीदी बेची जा रही हैं.... हम सांसों के मोहताज हुए जा रहे हैं। ऐसे समय में साहित्य और कला ने न सिर्फ बच्चों या किशोरों को बल्कि हर उम्र के लोगों को संकट से उबारने में मदद की है। हमने देखा कोई मास्क बनाकर अपनी रचनात्मकता और कौशल के साथ–साथ मानव सेवा में रत है तो कोई चित्र और कहानियों के द्वारा अपने संवाद कायम कर रहा है। श्री अरविंद ने कहा है, "विजय और चिरस्थाई तो वही चीज होती है जो श्रेष्ठ जनों को अपील करती हैं, साधुसम्मत, सर्वाधिक गंभीर और महान वस्तु तो वही होती है जो गंभीरतम् आत्माओं तथा अत्यंत संवेदनशील अन्तरात्मिक कल्पनाओं को तृप्त करती है। प्रत्येक ढंग की कला के अपने आदर्श, अपनी परंपराएं और स्वीकृत प्रथाएं होती हैं, क्योंकि सर्जनशील आत्मा के विचार और रूप अनेक होते हैं यद्यपि अंतिम आधार एक ही होता है।"[6] वह है सत्यं, शिवं, सुंदरं। जिस नैतिक शिक्षा की आज आवश्यकता है वह वर्तमान समय में चित्रों और कथाओं के माध्यम से खूब प्रचारित हुई । जिसने समाज पर सकारात्मक प्रभाव भी छोड़ा। यहां बताना होगा कि हमारी छात्राओं ने गत वर्ष 2020 से अब तक एकांतवास के दौरान जितने चित्र बनाए उतने तालाबंदी से पूर्व महाविद्यालय खुले रहने पर शायद ही बनाए होंगे। हां इसके मूल में हमारा उनके साथ जुड़ाव और शिक्षकों की प्रेरणा भी एक कारक रही, जिसे नकारा नहीं जा सकता । "हरबर्ट जैसे शिक्षाशास्त्री तो संपूर्ण शिक्षा का उद्देश्य ही नैतिकता का विकास मानते हैं, यदि

पढ़ लिखकर बालक सच्चरित न बन सका तो शिक्षा बेकार है।"[7] मेरा ऐसा मानना है कि सच्चारिता का पाठ हम कला और साहित्य के द्वारा जितनी आसानी से बच्चों और किशोरों में प्रस्फुटित करवा सकते हैं अन्य किसी माध्यमों में वह संभव ही नहीं है। वर्ष 1998 के साहित्य के नोबेल पुरस्कार विजेता होसे सरामागो (पुर्तगाली लेखक साहित्य) का जन्म एक अभावग्रस्त परिवार में हुआ था, बचपन से ही होशियार होने के बावजूद वे आर्थिक तंगी के कारण अपनी पढ़ाई जारी ना रख सके थे। परंतु 19 वर्ष की आयु में वे पहली बार किताब खरीद सके थे वह भी अपने दोस्त से रकम उधार लेकर उन्होंने अपनी उत्सुकता और सीखने की दृढ़ इच्छाशक्ति के कारण पढ़ने की आदत विकसित की और खुद को खूब सुसंस्कृत बनाया। बाद में अपने घर में एक समृद्ध लाइब्रेरी बनाई। आगे चलकर एक दिन विश्व के सबसे बड़े साहित्यिक मंच पर भाषण देते हैं और साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्राप्त करते हैं। वर्ष 1998 में नोबेल समिति ने होसे के काम की अनुशंसा में कहा था, "कल्पना, करुणा और विडंबना द्वारा बनाई कहानियों के द्वारा हमें एक बार फिर से जो कठिन यथार्थ को समझने में सक्षम बना लेता है।"[8] टेक्नोलॉजी ने मानव सभ्यता की वृत्ति प्रवृत्ति पर भी अपना दखल दर्ज किया है परंतु मनुष्य को अपनी मौलिकता को नहीं खोने देना है। इस संदर्भ में बचपन बचाओ आंदोलन के प्रणेता और मलाला यूसुफजई के साथ साझेदारी में शांति का नोबेल प्राप्त करने वाले श्री कैलाश सत्यार्थी जी का कहना है, "टेक्नोलॉजी की दखलअंदाजी इतनी बढ़ गई है कि वह दुनिया को पूरी तरह बदल देगी और शिक्षकों, स्कूलों, कॉलेजों की ज़रूरत को खत्म कर देगी, इससे मानवीय रिश्ते किस क़दर प्रभावित होंगे, इसकी हम सहज ही कल्पना कर सकते हैं। लेकिन हम इस संकट को पार कर लेंगे क्योंकि संकट से ही समाधान निकलते हैं। हम करुणा का वैश्वीकरण, कृतज्ञता आपूर्ति की श्रंखला, उत्तरदायित्व का ताना–बाना और सहिष्णुता का अलगोरिदम अपनाकर कोविड–19 के श्राप को मानव मूल्यों पर आधारित नई सभ्यता के निर्माण के वरदान में बदल सकते हैं (कोविड–19 : सभ्यता का संकट और समाधान : लेखक : कैलाश सत्यार्थी)"[9]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *पुस्तक – Letters from a father to his daugther Jawahar Lal Nehru, Page No.-Foreword.*
2. *हमारा अंतरिक्ष–लेखक टी–पक्षिराजन, पृष्ठ सं. 10*
3. *सौन्दर्य का तात्पर्य, प्रभाकर क्षोत्रिय, पृष्ठ सं. 13*
4. *वही*
5. *वही पृष्ठ सं. 14*
6. भारतीय संस्कृति के आधार, श्री अरविंद, अरविंद आश्रम पांडिचेरी से प्रकाशित, 1988, पृष्ठ संख्या. 285
7. शैक्षिक निबंध, डॉ. रामशकल पांडेय, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, 2001, पृष्ठ संख्या. 338
8. समकालीन भारतीय साहित्य, साहित्य अकादमी की द्विमासिक पत्रिका, मार्च–अप्रैल 2021, 214 अतिथि संपादक – बलराम, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 17–18
9. *वहीं, पृष्ठ सं0 217*